विद्यायिका में महिलाओं को आरक्षण : मार्ग और मुश्किलें

मनोज कुमार
प्रवक्ता
रामपाल त्रिवेदी इण्टर कॉलेज
गोसाईंगंज,लखनऊ।

दूसरे देशों की तुलना में भारतीय महिलायें कम से कम एक मामले में भाग्यशाली रहीं हैं और वह यह कि उन्हें आजादी के बाद ही पुरुषों की तरह मत देने और चुनाव में खड़े होने का अधिकार प्राप्त हो गया, मतदाता के रूप में पुरूषों के समान सीमित अधिकार तो उन्हें 1935 में ही हासिल हो गए थे, दुनिया के दूसरे देशों के तरह, उन्हें इसके लिए लम्बा संघर्ष नहीं करना पड़ा, पश्चिमी देशों में मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट द्वारा 1792 में स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग सबसे पहले उठाई गयी थी, तब से इस अधिकार के लिए जो कठिन और व्यापक संघर्ष शुरू हुआ, उसे 20वीं शताब्दी में सफलता हासिल हो सकी, कई देशों में तो आज भी महिलायें इस अधिकार से वंचित है।

ऐसा भी नहीं है कि समान मताधिकार, भारतीय महिलाओं को थाली में सजा कर दे दिया गया हो, भारत का शासन चलाने के लिए नए अधिनियम को लागू करने की पूर्व संध्या पर ब्रिटिश सरकार के तत्कालीन भारत मंत्री ईएस मांटेग्यु, 1917 में भारत आये, उस दौरान, 1 दिसंबर, 1917 को पांच महिलाओं का एक शिष्टमंडल उनसे मद्रास में मिला और महिलाओं के लिए मताधिकार की मांग रखी, मांटेग्यु–चेम्सफोर्ड सुझावों में यद्यपि मताधिकार को और विस्तृत करने का सुझाव भी शामिल था लेकिन इसमें महिलाओं का कोई उल्लेख नहीं था, 1918 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने महिलाओं के मताधिकार का समर्थन किया। जब 'द गवर्नमेंट ऑफ इंडिया बिल' पेश हुआ तब एनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू और हिराबाई ने महिलाओं को राजनीतिक अधिकार दिए जाने की वकालत की, लेकिन इस मसले को चुनी हुई सरकारों पर छोड़ दिया गया, त्रावणकोर और मद्रास पहले और दूसरे ऐसे राज्य थे, जिन्होंने क्रमशः 1920 और 1921 में महिलाओं को सीमित मताधिकार दिया, यह अधिकार केवल पढ़ी–लिखी महिलाओं को दिया गया था, इसके बाद दूसरे राज्यों में भी यह सिलसिला शुरू हुआ, 1931–32 में लार्ड लोथियन समिति ने महिलाओं को मताधिकार देने के लिए जो दो शर्ते निर्धारित कीं, वे बहुत भेद मूलक थीं, एक तो किसी भी भाषा में पढ़–लिख सकने वाली महिलाओं को मताधिकार देना प्रस्तावित किया गया, इसके अलावा, उन्हें किसी की पत्नी होना भी अनिवार्य कर दिया गया, यानी विधवायें या किसी कारण से विवाह न करने वाली महिलायें मताधिकार से वंचित रखीं गयीं,

प्रतिनिधित्व की कठिन डगर

मताधिकार प्राप्त हो जाने मात्र से महिलाओं का संघर्ष समाप्त नहीं हुआ, उसका दूसरा चरण था राजनीतिक प्रतिनिधित्व का संघर्ष, राजनीतिक पार्टियों द्वारा टिकट देने से लेकर उनके जिताकर लाने तक में पितृसत्तात्मक समाज और सत्ताकी अरूचि स्पष्ट दिखाती है कि आजादी के बाद पहली लोकसभा (1952) से लेकर अब तक संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ा तो है लेकिन अत्यंत धीमी गति से और यह आज भी बहुत कम

ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

है, 1952 में जहां संसद में 4.50 प्रतिशत महिलाएं थीं वहीं 2014 में यह प्रतिशत 11.3 प्रतिशत ही हो सका, हालांकि इस बीच विभिन्न कारकों के चलते, सार्वजनिक जीवन में महिलओं की सक्रियता गुणात्मक रूप से बढ़ी है। इस सक्रियता का ही नतीजा था कि महिलाओं के प्रतिनिधित्व को संसद में कम से कम 33 प्रतिशत करने के लिए महिला आरक्षण बिल की योजना बनी।

भारतीय जनता पार्टी आज सता में है, नई संसद के कई सत्र आये और चले गए लेकिन महिला आरक्षण बिल की कोई चर्चा नहीं हुई, यद्यपि सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणापत्र में इस बिल के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताई थी और सरकार के बनते ही सुषमा स्वराज ने महिला आरक्षण बिल को सरकार की प्राथमिकता बताया था,सरकार को बने हुए लगभग तीन वर्ष हो चुके हैं पर महिला आरक्षण बिल अभी भी राजनीतिक दलों के लिए केवल राजनीतिक लालीपाप दिखाई पड़ता है। यह सुखद है कि 16वीं लोकसभा में महिला प्रतिनिधित्व, 15वीं लोकसभा के 10.86 प्रतिशत से बढ़कर 11.3 प्रतिशत हो गया है, और पहली बार सरकार में 9 महिलायें महत्वपूर्ण मंत्रालय सम्हाल रहीं है फिर क्या कारण है कि नई सरकार के तीन साल बीत जाने के बाद भी इस बिल की सुध लेने वाला कोई नहीं है ? जबकि लोकसभा में सरकार को बहुमत प्राप्त है और विपक्षी दल भी इसके प्रति प्रतिबद्धता जता चुके हैं, यह उल्लेखनीय है कि पिछले लोकसभा चुनाव में प्रतिशत के हिसाब से मुलायम सिंह यादव के दल ने ममता बनर्जी के दल के बाद, दूसरे नम्बर पर सबसे जयादा महिला उम्मीदवार उतारे थे जबकि संख्या के हिसाब से आम आदमी पार्टी ने 39 महिला उम्मीदवार उतार कर दोनों बड़ी पार्टियों को पीछे छोड दिया था, सत्ताधारी भाजपा ने केवल 20 महिला उम्मीदवार उतारे थे, इन आंकड़ों से महिला आरक्षण के प्रति मूख्यतः पुरुष वर्चस्व वाले भारतीय राजनीतिक दलों की नियत का अन्दाजा लगाया जा सकता है, चुनाव में अपने खराब प्रदर्शन का विश्लेषण करते हुए सीपीएम ने जिन कारणों को चिह्नित किया उनमें से एक था कम महिला उम्मीदवारों को अवसर देना और इस मामले में उसने 'बुर्जुआ पार्टियों, को अपने से बेहतर पाया है।

महिला आरक्षण बिल एक निराशाजनक स्थिति

9 जून 2014 को माननीय राष्ट्रपति, श्री प्रणव मुखर्जी, ने संयुक्त सदन को संबोधित करते हुए नई सरकार की संसद और विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने की वचनबद्धता दोहराई। सभी दलों की महिला सांसदों ने मेजें थपथपाकर इसका स्वागत किया। पूर्ण बहुमत से आई सरकार की मंशा जाहिर होते ही उन महिला संगठनों व नारीवादियों में पुनः आशा जगी होगी जो पिछले अठ्ठारह वर्षो से महिला आरक्षण बिल पारित करवाने के लिए जद्दोजहद करते रहे हैं। यद्यपि जल्दी ही यह छोटी सी आशा बेबुनियाद लगने लगी, जब माननीय प्रधानमंत्री, श्री नरेन्द्र मोदी, ने 15 अगस्त 2014 को महिलाओं की सुरक्षा को लेकर तो जोरदार भाषण दिया पर महिला आरक्षण के वादे को बड़ी सरलता से भूल गए।

महिला आरक्षण विधेयक द्वारा संविधान में संशोधन कर लोकसभा की कुल 543 में से 179 सीटें और 28 विधान सभाओं की कुल 4109 में से 1356 सीटे महिलाओं के लिए आरक्षित की जानी हैं। पिछले 20 वर्षो का सफर महिला आरक्षण विधेयक के लिए अड़चनों से भरा रहा। 1993 में 73वें संवैधानिक संशोधन के जरिये पंचायतों और स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने के बाद हुए 1996 के लोकसभा चुनाव में सभी प्रमुख पार्टियों ने संसद और राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण को अपने चुनावी

घोषणापत्रों में रखा, तत्कालीन यूनाइटेड फ्रंट के प्रधानमंत्री एचडी देवगौड़ा के नेतृत्व वाली सरकार ने सबसे पहले महिला आरक्षण बिल को 4 सितम्बर, 1996 को लोकसभा में पेश किया, इसे गीता मुखर्जी की अध्यक्षता वाली संयुक्त संसदीय समिति को भेज दिया गया, जिसने 9 दिसंबर, 1996 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी, हालांकि राजनीतिक अस्थिरता के चलते इसे 11वीं लोकसभा में दुबारा पेश नहीं किया जा सका, इसे दुबारा पेश किया अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने 12वीं लोकसभा में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने इसे चार बार लोकसभा में पेश किया और हर बार हंगामे के बाद 'सर्वसम्मति निर्मित' करने के नाम पर इसे टाल दिया गया, कांग्रेस की नेतृत्व वाली यूपीए सरकार ने भी इसे दो बार संसद में पेश किया, मार्च 2010 में राज्यसभा ने इस बिल को पारित भी कर दिया लेकिन उसके बाद चार साल (15वीं लोकसभा के भंग होने तक) तक बिल लोकसभा में नहीं लाया जा सका।

अप्रैल 2014 में भाजपा ने अपने चुनाव घोषणापत्र में कहा था कि वह महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए प्रतिबद्ध है। इसी आलोक में माननीय राष्ट्रपति महोदय व प्रधानमंत्री के भाषणों से एक बार फिर महिला आरक्षण विधेयक पर साँप–सीढ़ी का खेल शुरू हो गया है। यह साँप–सीढ़ी का खेल नया नहीं है और तक तक चलता रहेगा जब तक महिलाओं के राजनैतिक भागीदारी को लेकर राजनैतिक दलों में इच्छाशक्ति की कमी रहेगी। सर्वविदित है कि सभी राजनैतिक दलों के महत्वपूर्ण समितियों– प्रदेश कार्यकारिणी, संसदीय बोर्ड, राज्य परिषद्, केन्द्रीय कार्यकारणी, केन्द्रीय परिषद, अनुशासन समिति आदि– में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य है। पर्याप्त संख्या में महिलाओं को चुनावी मैदान में उतारने में भी सभी दल कोताही बरतते हैं। बिहार विधान सभा चुनाव 2010 में सबसे कम राजद ने 6 प्रतिशत महिलाओं को उम्मीदवार बनाया, लोजपा और कांग्रेस ने 8.8 प्रतिशत। लोजपा के बिहार प्रदेश कार्यकारिणी में 2.7 प्रतिशत महिलाएँ हैं, वहीं राजद की कार्यकारिणी में 3.5 प्रतिशत। भाजपा ने केन्द्रीय कार्यकारिणी में 28 प्रतिशत, भाकपा माने ने 9 प्रतिशत, जदयू ने 12.6 प्रतिशत, और कांग्रेस ने 11 प्रतिशत महिलाओं को जगह दी थी। बिहार विधानसभा में महिला विधायकों की संख्या 2010 में 34 थी जो 2015 में घटकर 28 रह गयी। यद्यपि यह आकड़ा राष्ट्रीय औसत से बेहतर है, लेकिन महिला विधायकों के संबंध में बिहार दूसरे स्थान से गिरकर पाचवें स्थान पर आ गया है। कुल विधायकों (243) की अनुपात के रूप में, पिछले विधानसभा के 14 फीसद की मुकाबले इस बार 11.5 फीसद महिलाएं हैं और यह निश्चित तौर पर पिछले एक दशक के अन्दर महिला सशक्तीकरण में हुई प्रगति का उलटाव है। एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स द्वारा जुटाए गये आंकड़ों के अनुसार 28 महिला विधायकों में से 10 राष्ट्रीय जनता दल, 09 जनता दल (यू), 04 भारतीय जनता पार्टी तथा एक निर्दलीय हैं। चुनी गयी 28 महिला विधायकों में से 25 ने पुरुष उम्मीदवारों को हराया है। बिहार में कम महिला विधायक बनने के पीछे कारण कुछ ही महिला उम्मीदवारों को उतारना है। महागठबंधन ने 10.3 फीसद टिकट महिला उम्मीदवारों को दिए, वहीं एनडीए ने 9.5 फीसद महिला उम्मीदवारों को दिए थे। राष्ट्रीय जनता दल ने 10 महिला उम्मीदवारों को टिकट दिए थे, जो सभी निर्वाचित हुई अर्थात जीतदर 100 फीसद है। जनता दल (यू) ने भी 10 महिला उम्मीदवारों को चुनाव मैदान में उतारा था जिसमें 09 निर्वाचित हुई। भाजपा ने 14 महिला उम्मीदवारों को मैदान में उतारा था जिसमें केवल 04 ही महिलाएं निर्वाचित हो सकी। उत्तर प्रदेश की स्थति तो और भी खराब है। विधानसभा निर्वाचन 2012 में महिला विधायकों की संख्या 403 में मात्र 32 थी जो राष्ट्रीय औसत से भी कम है।

संसद 1952–2014 में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

क्रम स.	वर्ष	लोकसभा				राज्य सभा			
		कुल सीट	महिला सदस्य	पुरुष सदस्य	महिला प्रतिशत	कुल सीट	महिला सदस्य	पुरुष सदस्य	महिला प्रतिशत
1	1952	499	22		4.4	219	16		7.3
2	1957	500	27		5.4	237	18		7.5
3	1962	503	34		6.8	238	18		7.6
4	1967	523	31		5.9	240	20		8.3
5	1971	521	22		4.2	243	17		7.0
6	1977	544	19		3.4	244	25		10.2
7	1980	544	28		7.9	244	24		9.8
8	1984	544	44		8.1	244	28		11.4
9	1989	517	27		5.3	245	24		9.7
10	1991	544	39		7.2	245	38		15.5
11	1996	543	39		7.2	223	20		9.0
12	1998	543	43		7.9	245	15		6.1
13	1999	543	49		9.0	245	19		7.8
14	2004	545	45		8.2	245	28		11.4
15	2009	545	59		10.8	245	21		8.57
16	2014	545	62		11.3	245	28		11.4

उच्चतम महिला प्रतिनिधत्व वाले राज्य विधानसभाएं

क्र0सं0	राज्य	महिला प्रतिनिधत्व प्रतिशत में
1	हरियाणा	14.4
2	राजस्थान	14.0
3	मध्य प्रदेश	13.0
4	पंजाब	12.0
5	पश्चिम बंगाल	11.6
6	बिहार	11.5
7	असम	11.1
8	छत्तीसगढ़	11.1
9	आन्ध्र प्रदेश	10.3
10	उत्तर प्रदेश	07.9

नोट– विधानसभा निर्वाचन 2015 तक के आंकड़े ही उपर्युक्त सारणी में उल्लिखित हैं।

जब पार्टी संगठन में ही महिलाओं के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन, समर्थन और स्थान नहीं है, जब पार्टियाँ यह मान कर चल रही है कि काबिल महिलाएँ चुनाव नहीं जीत पाएँगी, केवल वही महिलाएँ जीत सकती हैं जिनके पीछे बाहुबल, धनबल, राजनैतिक विरासत या फिर किसी व्यक्तिगत त्रासदी की वजह से सहानभूति की लहर हो– तब संसद व विधान मंडल में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व कैसे दिख सकता है। आज लोक सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सिर्फ 11.3 प्रतिशत है जो अबतक का सर्वाधिक है। इसके पूर्व लोकसभा में 2009 में 10.82 प्रतिशत, 2004 में 8.16 प्रतिशत और 1999 में 9 प्रतिशत महिलाएँ ही चुनकर आई थीं। राजनैतिक भागेदारी के दूसरे पहलू यानि देश की सर्वोच्च निर्णायक भूमिकाओं में भी उनकी संख्या कम दिखाई देती है। 2006 में कैबिनेट मंत्रियों में केवल 3.45 प्रतिशत महिलाएँ थी, वहीं 2009 में 9.09 फीसद। वर्तमान सरकार की केन्द्रीय मंत्री परिषद के कुल 76 मंत्रियों में सिर्फ 9 महिलाएँ हैं यानि 11.84 फीसद। महिलाओं का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व राजनैतिक दलों की समझ का फेर है या उनके नीयत की खोट, यह उन महिलाओं को तय करना है जो बड़ी संख्या में वोट डालने निकल रही हैं।

महिला आरक्षण पर जारी संघर्ष– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सितंबर 1996 महिला आरक्षण विधेयक प्रस्तुत और संसद की संयुक्त संसदीय समिति के सुपुर्द

नवंबर 1996 महिला संगठनों द्वारा संयुक्त संसदीय समिति को संयुक्त ज्ञापन।

मई 1997 महिला संगठनों द्वारा राष्ट्रीय राजनैतिक दलों को संयुक्त ज्ञापन जुलाई 1998 विधेयक को पारित कराने की मांग को लेकर संसद के समक्ष महिलाओं का संयुक्त विरोध प्रदर्शन।

जुलाई 1998 राष्ट्रय महिला आयोग द्वारा महिला प्रदर्शनकारियों के साथ दुर्व्यवहार की निंदा व यह मांग कि विधेयक के प्रावधानों में कोई परिवर्तन न किया जाए।

अगस्त 1998 महिला संगठनों का संयुक्त प्रतिनिधिमंडल प्रधानमंत्री वाजपेयी से मिला।

अगस्त 1998 विधेयक को चर्चा व पारित करने हेतु सूचीबद्ध किए जाने की मांग को लेकर संसद तक संयुक्त मार्च और धरना।

नवंबर 1998 बारहवीं लोकसभा चुनाव में महिलाओं का संयुक्त घोषणापत्र जिसमें राजनैतिक दलों से इस विधेयक को पारित कराने की मांग की गई।

दिसंबर 1998 "वाईसेस ऑफ कम्युनिटीज फॉर 33 पर्सेन्ट रिजर्वेशन फॉर विमेन" का दिल्ली में संयुक्त अधिवेशन।

मार्च 1999 अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के संयुक्त आयोजन में महिला आरक्षण विधेयक को पारित करने की मांग प्रमुखता से उठाई गई।

अप्रैल 2000 मुख्य निर्वाचन आयुक्त को संयुक्त ज्ञापन जिसमें यह मांग की गई कि विधेयक के विकल्प के रूप में महिलाओं को पार्टियों द्वारा टिकट वितरण में आरक्षण दिए जाने के प्रस्ताव को वापस लिए जाने की मांग की गई थी।

दिसंबर 2000 लोकसभा अध्यक्ष मनोहर जोशी से महिलाओं के संयुक्त प्रतिनिधिमंडल की मुलाकात जिसमें जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में संशोधन कर राजनैतिक पार्टियों की उम्मीदवारों की सूची में महिलाओं को एक तिहाई प्रतिनिधित्व दिए जाने के प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए उनके द्वारा राजनैतिक दलों की बैठक बुलाए जाने पर विरोध व्यक्त किया गया।

मार्च 2003 केन्द्रीय संसदीय कार्यमंत्री सुषमा स्वराज को संयुक्त ज्ञापन सौंपकर यह मांग की गई कि सर्वदलीय बैठक में वैकल्पिक प्रस्तावों पर विचार करने की बजाए विधेयक पर मतदान कराया जाए अप्रैल 2003 स्थानीय स्व–शासी संस्थाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने वाले 73वें व 74वें संविधान संशोधन की दसवीं वर्षगाठ के अवसर पर सभी राजनैतिक दलों के नेताओं से बिल का समर्थन करने की अपील।

अप्रैल 2004 एनडीए सरकार को संसद में पराजित करने की अपील करते हुए संयुक्त वक्तव्य जारी। इसमें सरकार द्वारा आरक्षण विधेयक के मुद्दे पर महिलाओं के साथ विश्वासघात को एक कारण बताया गया था। मई 2004 कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी संयुक्त अपील कि वे न्यूनतम साँझा कार्यक्रम में महिला आरक्षण विधेयक को पारित करवाना शामिल करें।

मई 2005 संयुक्त प्रतिनिधिमंडल ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मिल कर विधेयक को चर्चा के लिए प्रस्तुत किये जाने की मांग की।

मई 2006 संयुक्त प्रतिनिधिमंडल ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से एक बार फिर मिल कर विधेयक को प्रस्तुत किये जाने की मांग की।

मई 2006 संयुक्त प्रतिनिधिमंडल में रेल मंत्री लालू प्रसाद यादव से मिल कर उनसे यह अनुरोध किया कि विधेयक के सम्बन्ध में सकारात्मक पहल करें।

मई, 2007 में सरकार ने विधेयक को राज्य सभा में प्रस्तुत किया ताकि वह निरस्त न हो जाये।

दिसम्बर 2, 2009, संसद की विधि एवं न्याय व कार्मिक विभागों की स्थायी समिति ने विधेयक को पारित करने की अनुशंसा की।

फरवरी, 2010, विधेयक को कंद्रीय कैबिनेट की मंजूरी मिल गयी।

मार्च, 2010, राजसभा मसें विधेयक पारित हुआ।

2014 के आम चुनाव के दौरान अखबारों में लगातार रिपोर्ट आती रही कि महिलाएं पुरुषों से ज्यादा संख्या में वोट डालने निकल रही हैं। 16 राज्यों में जिनमें–बिहार भी है– महिला मतदाताओं का प्रतिशत पुरुषों से ज्यादा रहा। अपनी राजनैतिक भागेदारी को लेकर महिला मतदाताओं में चेतना बढ़ी है। पर शायद ही यह महिलाओं के लिए दलों के भीतर उनका कद बढ़ सके। सभी राजनैतिक दलों में महिलाओं का वोट हासिल करने के लिए महिला प्रकोष्ठ हैं जो इस परिप्रेक्ष्य में और भी सक्रिय हो उठेगा। पर जैसे ही महिला प्रत्याशियों को चुनाव में खड़ा करने का सवाल आएगा उग्र पितृसत्तात्मक सोच दलों में हावी होने लगेगी। काबिल और जमीन से उभरी महिला नेता धनबल, बाहुबल और विरासत की राजनीति के लिए चुनौती हैं। ये वो नेता हैं जो वास्तव में आम महिलाओं की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं, ना कि उन पतियों, पिताओं आदि रिश्तेदारों की महत्वकांक्षाओं का जो अपनी सीटों से चुनाव लड़ने की स्थिति में नहीं हैं। यदि इस तरह की जुझारू महिला नेता बड़ी संख्या में चुनकर आ गयी तो महिलाओं के मुद्दों पर व उनके हक–अधिकार के लिए काम करेंगी। महिलाओं की सुरक्षा पर जोशीले भाषण ना देकर ऐसी आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक नीतियाँ एवं कानून लागू करेंगी जिससे पितृसत्ता के ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन हो, स्त्री–पुरुष समानता स्थापित हो। महिलाओं के लिए व्यक्ति, घर, समाज, और राज्य में सम्मान बढ़े, महिलाओं के प्रति इनका रवैंया सहयोगी और साकारात्मक हो, और असुरक्षा जड़ से खत्म हो जाए। हो सकता है कि आज के ज्यादातर विधायकों और सांसदों को ऐसी महिलाओं के चुनकर आने से परहेज हो और राजनैतिक दल सिर्फ चुनावी घोषणापत्र में ही महिला आरक्षण की बात करते रह जाएँ। वास्तव में किसी भी राज्य में महिला सांसद हो या विधायक में बड़ी संख्या ऐसी महिलाओं की हैं

जिनके पति खुद चुनाव लड़ने की पात्रता खो चुके थे इसलिए पत्नियों को उनकी नैया पार लगाने की जरूरत पड़ी।ऐसी भी महिला सांसद/विधायक हैं जिन्हें चुनाव जीत चुके पुरुष अपने दायरे का विस्तार करने के लिए आगे बढ़ा रहे हैं। ये महिला की बड़ी से बड़ी घटना पर भी उनका वक्तव्य नहीं आता, किसी प्रकार की कार्यवाई कैसे करेंगी ?

उल्लेखनीय है कि 2010 में राज्यसभा में महिला आरक्षण विधेयक पारित होने का प्रसंग भी नाटकीयता से भरपूर रहा। विधेयक पर चर्चा तभी हो पाई थी जब उपद्रवी सांसदों को मार्शल की मदद से उठाकर बाहर कर दिया गया। राज्य सभा ने अभूतपूर्व कदम उठाते हुए समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल व जनता दल यूनाईटेड के सात सांसदों को उनकी उद्दंडता के लिए बजट सत्र के बचे कार्यकाल के लिए निलंबित कर दिया। विधेयक को संप्रग के बाकी घटक दल, भरतीय जनता पार्टी, अन्नाद्रमुक, तेलगुदेशम पार्टी और वाम दलों का समर्थन मिला। पर तृणमूल कांग्रेस ने सप्रंग सरकार का घटक दल होकर भी मतदान में भाग नहीं लिया। जनता दल यूनाईटेड संप्रग के अध्यक्ष को विधेयक पेश नहीं करने के लिए राजी करने की कोशिश करता रहा। समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल ने संप्रग सरकार से समर्थन वापस लेने की धमकी दी। बसपा के सांसद वाकआउट कर गए क्योंकि उनको विधेयक के मौजूदा प्रारूप से विरोध था।

आरक्षण के भीतर आरक्षण

लगभग सभी पार्टियों की सैद्धांतिक सहमति के बावजूद उनका पुरुष नेतृत्व महिलाओं के लिए जगह खाली करने को तैयार नहीं है, अन्यथा, पिछले 20 सालों से यह बिल सर्वसम्मति की तलाश में लटका नहीं रहता, जहां सीपीएम जैसे दल महिलाओं को टिकट देने के मामले में 'बुर्जुआ पार्टियों' को अपने से बेहतर पा रही हैं वहीं भारतीय जनता पार्टी ने अपने संगठनात्मक ढाँचे में महिलाओं की 33 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित करने का दावा किया। इस बिल के न पास होने का ठीकरा अस्मितावादी पार्टियों और उनके नेताओं ने अलग–अलग राग अलापा, फिर परकटी महिलाओं वाले पुरुषवादी मानसिकता से लबरेज जुमले को नजरअंदाज करते हुए देखना यह चाहिए कि क्या इन नेताओं द्वारा पिछड़े वर्ग की महिलाओं की 'जायज प्रतिनिधित्व' के मुद्दे पर वर्तमान महिला बिल का विरोध, क्या सर्वथा'महिला–विरोधी' स्टैंड है? ये पार्टियां और नेता सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से पिछड़ी महिलाओं के लिए महिला आरक्षण के भीतर आरक्षण की मांग करते रहे हैं, गत 12 दिसंबर, 2015 को नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वीमेन और स्त्रीकाल द्वारा महिला आरक्षण पर आयोजित राउंड टेबल में दलित स्त्रीवादी विचारक और 'राष्ट्रीय दलित आन्दोलन की संयोजक राजनीतिक आदि ने स्पष्ट किया' कि उनका एक प्रतिनिधिमंडल लालू प्रसाद आदि नेताओं से महिला आरक्षण बिल में पिछड़े वर्ग की महिलाओं के आरक्षण के लिए मिलने गया और इस तरह इन नेताओं की आवाज दलित–बहुजन स्त्रियों की आवज है, 'उन्होंने दावा किया कि बहुजन नेताओं द्वारा कोटा के भीतर कोटा की मांग वास्तव में दलित–बहुजन स्त्रियों द्वारा उठाई गई मांग का ही विस्तार है' ?

अलग–अलग फॉर्मूले पिछले 20 सालों की राजनीतिक कवायद के दौरान महिला आरक्षण को लेकर कई फॉर्मूले भी सामने आये। इनमें एक फॉर्मूला है पार्टियों के द्वारा टिकट बंटवारे में 33 प्रतिशत आरक्षण का, जिसे अनुपयोगी मानने वालों का तर्क है कि ऐसे में पुरुष–प्रधान पार्टियां न जीती जा सकने वाली सीटें महिलाओं को दे देंगीं, एक वर्ग पार्टियों के संगठनात्मक ढांचे में आरक्षण की मांग कर रहा है, जो कि पार्टियों के अपने संविधान में परिवर्तन के जरिये सुनिश्चित किया जा सकता है, भारतीय जनता पार्टी ने

इसकी पहल भी की है लेकिन प्रतिनिधित्व का सही तरीके की सफलता प्रायः पुरुष वर्चस्व वाली पार्टियों की सद् इच्छा पर निर्भर करेगा। महिला आरक्षण के लिसिलिले में अब तक लोकसभा और विधानसभाओं से ही आरक्षण की बात की जाती है जबकि विधेयकों के पारित होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली राज्यसभा और विधानपरिषदों में महिला आरक्षण के लिए कोई पहल नहीं की जा रही है, इसके लिए मेधा नांदिवादेकर ने एक फॉर्मूला सुझााया गया था कि चूँकि प्रत्येक राज्य हर दो वर्षों में राज्यसभा के अपने एक–तिहाई कोटे का चुनाव करता है और बड़े राज्यों के मामले में जहां एक–तिहाई सीटों तीन से कम हैं, वहां पहले दो चुनावों में तो एक–एक सीट महिलाओं के लिए आरक्षित की जा सकती हैं और तीसरे चुनाव में सारी सीटें अनारक्षित रखी जा सकतीं हैं, यही फॉर्मूला विधानपरिषदों और अन्य समितियों के लिए भी अपनाया जा सकता है।

महिला आरक्षण आज समय की आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक प्रतिनिधि स्तर पर महिलाओं की उचित सहभागिता हेतु महिला आरक्षण होना चाहिए, चाहें राजनीतिक दल आपसी सहमति से फार्मूला कोई भी स्वीकार करें। यद्यपि अनिवार्य प्रतिनिधित्व महिलाओं का प्रत्येक सदन में (लोकसभा एवं विधानसभा) हो इसके लिए लोकसभा तथा विधानसभा में 33 फीसद निर्वाचन क्षेत्रों का आरक्षित होना आवश्यक है। महिला आरक्षण का मूल उद्देश्य यही है कि महिलाओं की सहभागिता विधायिका को इतनी अवश्य हो कि महिला प्रतिनिधि आम महिलाओं की आवाज बन सके जिससे उनके हितों की रक्षा हो सके तथा उनके सामाजिक, आर्थिक आदि पक्षों से सम्बन्धित उचित कानून का निर्माण हो सके। किसी कानून/निर्णय को रोका जा सके जिनसे महिलाओं के हितों की उपेक्षा होती है या पुरुष प्रधान समाज के हितों की एंकाकी रक्षा होने की सम्भावना हो। परन्तु इस मूल ध्येय की पूर्ति महिला आरक्षण से तभी संभव है जब आरक्षण का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग की महिला को प्राप्त हो और इसके लिए दलों को अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग की महिलाओं को उचित सहभागिता सुनिश्चित होनी चाहिए जैसे कि स्थानीय निकाय में महिलाओं के लिए की गयी है। भारतीय समाज जाति व्यवस्था के कुचक्र में इतनी गहराई से फसा है कि समाज का एक वर्ग, दूसरे वर्ग को संदेह की दृष्टि से देखता है। इस दृष्टि से भी प्रत्येक वर्ग की महिलाओं की सहभागिता विधायिका में सुनिश्चित हो सके, उसके लिए "आरक्षण के भीतर आरक्षण" एक विकल्प हो सकता है। महिला आरक्षण के विचार में यह विचार भी विचारणीय होना चाहिए कि महिला आरक्षण की व्यवस्था करते समय ऐसी व्यवस्था हो कि इस आरक्षण का लाभ वे महिलाएं न उठा सकें, जिनके पति, पिता या ऐसे ही अति नजदीकी सगे सम्बन्धी पहले से राजनीतिक उच्च पदों पर विराजमान हैं। इसकी बानिगी जिला पंचायत अध्यक्ष एवं ब्लाक प्रमुख के पदों पर देखी जा सकती है जहाँ बहुत सी महिलाएं ऐसी महिलाएं हैं जिनके सगे सम्बन्धी राजनीतिक उच्च पदों पर आसीन हैं। आम महिला का प्रतिनिधित्व इन पदों पर नाममात्र का है। इसलिए इस बुराई को ध्यान में रखकर ही महिला आरक्षण विधायिका में होना चाहिए। सभी लोगों को एक बात ध्यान में रखनी होगी कि राज्यसभा, "राज्यों का सदन" है, न कि "जनता का सदन" इसलिए राज्यसभा में महिला आरक्षण संभव नहीं है। राज्य सभा का उद्देश्य राज्यों के हितों की रक्षा करना है। लोकसभा ऐसे निर्णयों से बचे जो राज्यहित की उपेक्षा करते हो, यह देखना राज्य सभा का कार्य है।

आरक्षण का प्रभाव

महिलाओं के आरक्षण के प्रसंग में अक्सर यह सवाल किया जाता है कि उनके प्रतिनिधित्व में इजाफे से महिलाओं को क्या लाभ होगा? पहली

बात तो यह है कि अधिक प्रतिनिधित्व अपने–आप में एक लाभ है, जब ग्रम पंचायतों में पहली बार 33 प्रतिशत आरक्षण लागू किया गया तब पंचायतों में 43 प्रतिशत महिलाएं चुन कर आई थीं, दरअसल, महिलाओं की क्षमता और योग्यता को पुरुष वर्चस्व हमेशा से सन्देह की निगाहों से देखता रहा है और महिलाओं ने जब–जब मौका हासिल किया है (कभी पुरुष उदारता ने उन्हें यह मौका नहीं दिया यह तो उन्होंने यह लड़कर हासिल किया या पितृसत्तात्मक समाज की कमजोरियों ने उन्हें यह अवसर दिया), तब–तब उन्होंने अपने को साबित ही किया है जब बिहार में देश में पहली बार स्थानीय निकायों में महिलाओं को 50 प्रति आरक्षण मिला तो समाज इसके लिए तैयार नहीं था। व्यवहारिक तौर पर महिला जनप्रतिनिधियों के पुरूष अभिभावक ही सत्ता संचालन करने लगे, 'मुखियापति' जैसे शब्दों का आविर्भाव और महिला मुखिया के लिए अश्लील गीत प्रचलन में आए बिहार के बाद महाराष्ट्र में भी लागू हुआ और मैं इन दोनों राज्यों के खबरों के आधार पर कह सकता हूं कि महिला जन प्रतिनिधियों ने शुरूआती हिचक के बाद धीरे–धीरे पुरुष अभिभावकों से मुक्ति पानी शुरू कर दी, महाराष्ट्र के एक जिले की लगभग तीन दर्जन पंचायतों के अध्ययन के आधार पर शोध निष्कर्ष सामने आया कि महिला सरपंच (मुखिया) वाले गाँव में महिलाओं की राजनैतिक जागरूकता बढ़ी और वे पंचायतों में जयादा सक्रिय हुई हैं। ऐसी ही स्थिति उत्तर प्रदेश सहित अन्य राज्यों में देखी जा सकती है कि महिला संरपंचों ने तुलनात्मक रूप से बेहतर कार्य किए। यद्यपि यह स्थिति वहीं संभव हो पायी जहां महिला प्रतिनिधि स्वतंत्र ढ़ग से अपने कार्यों को कर सकीं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह विचार बिहार पर देखा जा सकता है। बिहार, 1920 के दशक में महिलाओं को दूसरे प्रदेशों द्वारा दिये जा रहे मताधिकार के प्रति अडियल रुख अपनाता रहा था और 1929 में कई राज्यों के द्वारा पहल किये जाने के बाद, बिहार विधानसभा ने महिलाओं को यह हक दिया, वहीं इन दिनों महिला सशक्तिकरण के लिए बिहार सबसे अब्वल पहल लेता हुआ राज्य दिख रहा है, 2005 में देश में यह पहला राज्य बना, जिसने स्थानीय निकायों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दिया, शिक्षा, स्वास्थ्य और पुलिस सेवा सहित विभिन्न नौकरियों में भी यह राज्य महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दे रहा है,

बाधाँए/समस्याएँ

कुछ लोगों के विरोध के चलते गेंद अब पूर्णतः भाजपा के पाले में है, वह इस बिल को और नहीं टाल सकती। सवाल यह भी है कि 'आरक्षण के भीतर आरक्षण', क्या इस बिल को टालने का हथियार भर है, ऐसा नहीं माना जा सकता। यह सही है कि आज भारत में संख्याबल और भागीदारी के अनुपात में ही चुनावों में टिकट बांटे जाते हैं, जाति विशेष की आबादी देखते हुए उम्मीदवार तय होते हैं, इस प्रवृत्ति ने कम से कम इतना सुनिश्चित तो जरूर किया है कि राष्ट्रीय और राज्य चुनावों में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान न होने के बावजूद,इन जातियों के प्रतिनिधि लोकसभा में बड़ी संख्या में पहुँच रहे हैं, जो आज से दो दशक पहले तक नहीं होता था, लेकिन सवाल यह है कि आरक्षण के भीतर आरक्षण से कौन सा वर्ग भयभीत है और इसके प्रावधान से हर्ज ही क्या है? 'परकटी और बालकटी' जैसे जुमलों की निंदा करते हुए इस विडम्बना को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि महिला आरक्षण लागू करवाने में असफलता के लिए स्त्रीवादी आंदोलनों पर पुरुष वर्चस्व के अलावा सवर्ण वर्चस्व भी समान रूप से जिम्मेवार हैं, यह भी एक बड़ी विडम्बना ही है कि महिलाओं के प्रतिनिधित्व के सवाल पर सक्रिय महिलायें, जाति–प्रतिनिधित्व के मसले पर एक राय नहीं हो पाती, वहीं जाति–प्रतिनिधित्व के

सवाल पर सहमत लोग महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मसले पर ईमानदार पहल नहीं करते, जबकि प्रतिनिधित्व का मूल लक्ष्य सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से पीछे छूट गए लोगों को प्रतिनिधित्व देना है, बीपी मंडल की सिफारिशें लागू होने के बाद दिल्ली के संभ्रांत गार्गी महिला कालेज की सवर्ण छात्राओं ने उसके विरोधियों का साथ जमकर निभाया, उनके हाथों में एक तख्ती होती थी, जिसपर लिखा होता था 'हमारे पतियों की नौकरी नहीं छीनो', इस आन्दोलन के तुरन्त बाद, छात्रसंघ चुनावों में छात्राओं के साथ जब भेदभाव किया गया तो उनके सवर्ण साथियों की जगह दलित साथियों ने ही उनका साथ दिया।

यह विडम्बना ही है कि आरक्षण और प्रतिनिधित्व के सबसे बड़े सिद्धांतकारों महात्मा फुले, शाहूजी महाराज, पेरियार और डा० बाबा साहेब अम्बेडकर के प्रति महिला संगठनों में न तो आदर भाव है और ना ही कृतज्ञता भाव, जबकि इन सभी ने महिलाओं के लिए अभूतपूर्व पहल की थी। डा० अम्बेडकर ने तो महिलाओं के अधिकार के लिए 'हिन्दू कोड बिल' पर संघर्ष करते हुए आजाद भारत के पहले मंत्रीमंडल से इस्तीफा दे दिया था। समानता के सिद्धांत में किन्तु–परन्तु के साथ आस्था के कारण ही शायद महिला आरक्षण बिल के मामले में महिला नेताओं और आन्दोलनकारियों ने पिछले 20 सालों में भी अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कि है, और इन्हीं रास्तों से पुरुष–वर्चस्व अपने लिए मार्ग तलाश लेता है, यही कारण है 'आरक्षण के भीतर आरक्षण' के समर्थकों को खलनायक बना कर पुरुष तंत्र इस महत्वपूर्ण बिल को टालता रहता है।

इस पृष्ठभूमि में सभी राजनैतिक दलों की सहमति बनाकर महिला आरक्षण विधेयक पास करने की कोशिशें बेमानी सिद्ध होती रहेंगी। सर्वसम्मति बनाने के कई फॉर्मूले लगातार नाकामयाब होते रहे हैं। दो सदस्यीय चुनाव क्षेत्र, महिला उम्मीदवारों को हर पार्टी में ही आरक्षण मिले जैसी कई धारणाएं आयीं और गई। महिला आरक्षण बिल के वर्तमान स्वरूप के विरोध में जमीनी हकीकत से जुड़ा एकमात्र विचारणीय विवाद है महिलाओं के लिए आरक्षण के अन्दर जातिगत आरक्षण ताकि अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं को भी राजनैतिक नेतृत्व के वही अवसर मिले जो उच्च वर्ग व जाति की महिलाओं को आरक्षण से मिलेंगे। सही अर्थों में अब यह भी विवाद का विषय नहीं रह गया है क्योंकि पंचायतों में कोटा के भीतर कोटा को लेकर पिछले पन्द्रह वर्षों से कामयाब फार्मूला स्थापित किया जा चुका है। इसी फॉर्मूले को विधान सभा और संसद के लिए लागू कर देना सबसे सरल उपाय है।

जब यह मालूम है कि कमोबेशी सभी राजनेता महिला आरक्षण को लेकर उदासीन हैं तो वह कौन सी ताकत है जो उनको विधेयक पारित करने को मजबूर करे। यहीं पर एहसास होता है कि महिला आंदोलन कितनी कमजोर कर हाशिये पर धकेली जा चुकी हैं। कुछ बिखरे हुए प्रयास महिला संगठन व नारीवादी लगातार करते आ रहे हैं पर ताकत पुरजोर नहीं दिखती। कई नारीवादी यह प्रश्न भी उठाते रहे हैं कि 33 प्रतिशत की सीमा किस आधार पर तय की गई है और किसने की है? जब महिलाएं देश की आधी आबादी हैं तो आरक्षण 50 प्रतिशत क्यों नहीं? यदि राजनैतिक इच्छा शक्ति हो या जनान्दोलन में ताकत हो तो 50 प्रतिशत के लिए संविधान में जरूरत मुताबिक संशोधन को कौन रोक सकेगा? नागरिक समाज, महिला संगठन, नारीवादियों को हतोत्साहित होने की नहीं, बल्कि नए सिरे से संगठित और संयुक्त प्रसास करने की जरूरत है। आज हमारे पास अनुकूल परिस्थितियों भी हैं।

नंबर एक कि पंचायत में चुनकर आ रही महिलाएँ ना सिर्फ कई मोर्चे पर अपनी काबलियत सिद्ध करने में सफल रही हैं बल्कि उन्होंने

ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

जमीनी स्तर पर महिलाओं के नेतृत्व को सामाजिक स्वीकृति भी दिलानी शुरू कर दी है। आश्यर्च नहीं कि बिहार में पंचायती राज में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण है पर 1999–2009 के बीच यहाँ पंचायतों में 54.12 प्रतिशत महिलाएँ चुनकर आई– यानि आरक्षित सीटों से भी ज्यादा। इन कर्मठ महिलाओं की राजनैतिक महत्वकांक्षा धीरे–धीरे बुलंद होगी और आशा है कि पितृसत्तामक सोच की गुलामी नहीं रहेगी। ये सभी आगे चलकर विधानसभा और संसद में अपनी पैठ बनाना चाहेगी। याद रहे इन महिलाओं में हर धर्म, जाति और वर्ग की महिलाएं हैं जो कि सामाजिक–राजनैतिक सता के विकेन्द्रीकरण में भी सहायक होगा। दूसरा अनुकूल तथ्य है महिलाओं के वोटों की बढ़ती संख्या। यह तो वक्त ही बताएगा की महिला प्रत्याशी इन वोटों पर कब्जा कर पाएंगी कि नहीं। महिला संगठनों और महिला आंदोलन के प्रयासों से यह वोट उन महिला प्रत्याशियों को मिल सकता है जिनहें उन संगठनों का समर्थन प्राप्त हो। भारतीय राजनीति के पितृसत्तात्मक–वंशवादी चरित्र, जहाँ धनबल और बाहुबल का बोलबाला है, वहाँ कई स्तरों पर अनुकूल सामाजिक परिस्थितियाँ तैयार करने की जरूरत है ताकि महिलाएँ भारतीय जनतंत्र में वोटर के साथ–साथ लीडर के रूप में भी सशक्त हों। महिलाओं के राजनैतिक भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में आरक्षण एक अनिवार्य कदम है। हमें अब यह देखना है कि पूर्ण बहुमत से आई वर्तमान सरकार महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देकर उनकी कसौटी पर खरा उतरती है या नहीं। इससे यह भी पता चलेगा कि वह महिला सशक्तिकरण के प्रति व्यापक व गहरी सोच रखती है या उनको सुरक्षा–असुरक्षा के मायाजाल में उलझाए रखना चाहती हैं।

संन्दर्भ सूची

1. सिंह राजबाला व सिंह मधुबाला : भारत में महिलायें, आबिष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2006,
2. डॉ0 अनामिका : हसते चेहरे खटते हाथ : स्त्री विमर्श का कैनवास, समकालीन जनमत, समाचार पत्रिका, प्राइवेट प्रेस लिमिटेड़, इलाहाबाद, मार्च, 2010
3. डॉ0 सिंह निशांत : महिला राजनीति और आरक्षण, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010,
4. सारस्वत स्वप्निल व डॉ0 सिंह निषांत : समाज, राजनीति व महिलाए : दशा व दिशा, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
5. डॉ0 जोशी गोपा : भारत में स्त्री आसमानता : एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006
6. शर्मा रानू : लक्ष्य से दूर ग्रामीण नारी, राधा पब्लिकेषन, नई दिल्ली, 2007
7. मोदी सरोज : विधानसभाओं में महिला विधायक, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991
8. कपूर मस्तराम : नारी मुक्ति राजनैतिक मुद्दा क्यों नहीं बनता, सम्पादक रावत ज्ञानेन्द्र : औरत एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, विष्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006
9. कटारिया कमलेश : नारी जीवन वैदिक काल से आज तक, यूनिक ट्रेडर्स जयपुर, 2003, सेतिया सुभाष : स्त्री अस्मिता के प्रश्न, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2006

10. राजकिशोर : स्त्री के लिए जगह सम्पादित रावत ज्ञानेन्द्र : औरत एक समाजषास्त्रीय अध्ययन, विष्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006

11. राव सुनंदा : भारत में महिलाओं के साथ राजनीति, सरोकार, नई दिल्ली, 27–02–2009 को प्रकाशित

12. डॉ0 जोशी गोपा : भारत में स्त्री असमानता : एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेषालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006

13. डॉ0 शुक्ल प्रवीण : महिला सशक्तिकरण : बाधाएं व संकल्प, आर0 के0 पब्लिशर्स दिल्ली, 2009, पृष्ठ–27

14. गीताश्री : सुबह होने को है माहौल बनाये रखिये सम्पादित, मृणाल पांडे व क्षमा शर्मा : बन्द गलियों के विरूद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

15. चिरमुले प्रणोति : महिलाओं की साम्प्रदायिक गोलबंदी, समाचार पत्रिका समकालीन जनमत, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, मार्च 2010

16. डॉ0 मोदी महावीर प्रसाद : भारतीय राजनीति की प्रवृतियॉ, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2009,

17. मुदगल चित्रा : कम ही सही पुरूष मानसिकता में परिवर्तन तो आया है, सम्पादित मृणाल पांडे व क्षमा शर्मा : बन्द गलियों के विरूद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

18. डॉ0 सिंह निशांत : महिला राजनीति व आरक्षण, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010

19. अग्रवाल शिखा : राजनीतिक परिदृष्य में नारी, सम्पादित प्रज्ञा शर्मा : भारतीय समाज में नारी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001

20. काछी नवीन कुमार : महिलाओं का विकास : प्रतिबद्धताएं प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, अक्टूबर–2007

21. सारस्वत स्वप्निल एवं डॉ0 निशांत सिंह : समाज, राजनीति और महिलाएं, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

22. वर्मा सुषमा : संसद में महिलाओं की हिस्सेदारी, ॅण्च्तंईींज ड्डींइमतण ब्वउ

23. चतुर्वेदी इनाक्षी व सीमा अग्रवाल : महिला नेतृत्व व राजनीतिक सहभागिता, आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर, 2010

24. विश्नोई ओम राज सिंह : सामाजिक परिपेक्ष्य में महिलाएं, अरावली बुक्स इण्टरनेशनल, नई दिल्ली, 2000

25. मोदी सरोज : विधान सभाओं में महिला विधायक, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991,

26. कपूर मस्तराम : नारी मुक्ति राजनैतिक मुद्दा क्यों नहीं बनता, सम्पादक रावत ज्ञानेन्द्र : औरत एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006

27. कटारिया कमलेश : नारी जीवन वैदिक काल से आज तक, यूनिक ट्रेडर्स पब्लिकेशन, जयपुर, 2003

28. कटियार अलका : महिला सशक्तिकरण : दषा व दिषा, सम्पादित डॉ0 एस0 अखिलेश एवं शुक्ल सन्ध्या : महिला सशक्तिकरण : दशा व दिशा, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा, 2010,

29. डॉ0 शर्मा सतीष कुमार : नारी पुनकत्थान में गांधी विचारों का योगदान, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 1997

Copyright © 2017, Manoj Kumar. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.